



## उपसंहार

काव्य की अपेक्षा नाटक की प्रतिष्ठा सदैव अधिक रही है। काव्य के आनंद से वंचित रहने वाले व्यक्ति भी नाटक का मनोहर अभिनय देखकर असीम अलौकिक आनंद की उपलब्धि करते हैं। विद्वानों की मान्यता है कि काव्य श्रवण मार्ग से हृदय को आकृष्ट करता है तथा अपना प्रभाव जमाता है, परन्तु नाटक नेत्र मार्ग से हृदय को चमत्कृत करता है। विद्वानों की इस अवधारणा से सहमत नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि काव्य पढ़ा एवं सुना जाता है तथा नाटक पढ़ा, सुना एवं देखा जाता है। पढ़ने का कार्य केवल नेत्रों द्वारा संभव है। उपर्युक्त अवधारणा प्राचीन काल में उचित थी, किन्तु आज के संदर्भ में यह पूर्णतया अनुचित है।

नाटक—रचना का उद्देश्य जनमानस का मनोरंजन है। काम करके आए व्यक्ति को अपनी मानसिक एवं शारीरिक थकावट दूर करने के लिए किसी साधन की आवश्यकता होती है और इसके लिए मनोरंजन से अच्छा कोई साधन नहीं हो सकता। कदाचित् इसी मनोरंजन के लिए ही नाटकों की रचना की गई।

आजकल नाटक पढ़े जाते हैं और रंगमंच पर खेले भी जाते हैं। रसानुभूति के लिए जिस रसमय वातावरण की आवश्यकता होती है वह न तो पढ़कर पूरी होती है और न ही उसकी अनुभूति होती है, मात्र कुछ सहृदयों को छोड़कर। नाटक जब रंगमंच पर अभिनीत होता है तो वेशभूषा, साज—सज्जा, ध्वनि, प्रकाश आदि का संविधान दर्शकों के हृदय पर एक अमिट प्रभाव डालता है। रसानुभूति के लिए वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है। पात्रों के वाचिक कथोपकथन एवं अवाचिक संकेत साधारणीकरण की स्थिति उत्पन्न करते हैं। परिणामस्वरूप दर्शक अभिनीत नाटक को देखकर इतना अधिक अभिभूत हो उठता है कि वह अपनी

सुध-बुध खो बैठता है। इसी कारण काव्य की अपेक्षा नाटक विशेष प्रभावशाली होता है।

संस्कृत-साहित्य में नाटकों की उत्पत्ति अति प्राचीन काल में हो चुकी थी। वैदिक युग में नाटकों के अस्तित्व का परिचय मिलता है। ऋग्वेद के यम-यमी संवाद, उर्वशी पुरुरवा संवाद, सरमा-पणी संवाद, सामवेद में संगीतत्त्व, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य विधान आदि तत्त्वों से नाटक की वेद मूलकता सिद्ध होती है। भरत मुनि के अनुसार देवासुर संग्राम के पश्चात् इन्द्र ध्वज महोत्सव पर देवताओं ने नाटक का आरंभ किया था। 'रामायण' में 'शैलूष', 'नट' 'कुशीलव', 'नर्तक' शब्दों का उल्लेख अनेक प्रसंगों में किया गया है। इसमें 'व्यामिश्र' ऐसे नाटकों के लिए प्रयुक्त है, जिनमें विभिन्न भाषाओं का मिश्रण रहता है। 'महाभारत' में रंगशाला, नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का निर्देश मिलता है। पाणिनि के 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षु-नट-सूत्रयोः' (4/3/110) तथा 'कर्मन्द कृशाशवादिनि' (4/3/111) सूत्र से सिद्ध होता है कि पाणिनि से पहले ही शिलालि और कृशाश्व नामक दो नाट्याचार्य हो चुके थे, जिन्होंने 'नट सूत्र' (नाट्य शास्त्र) का प्रवचन किया था अर्थात् भारतीय नाट्य-शास्त्र कला पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। पाणिनि के सूत्रों की व्याख्या करते हुए पतंजलि ने अपने महाकाव्य में लिखा है कि रंगशालाओं में नाटक होते थे और दर्शक उन्हें देखने के लिए जाया करते थे। उन्होंने अपने समय के प्रचलित 'कंसवध' तथा 'बलिवध' नामक दो नाटकों का स्पष्ट उल्लेख किया है। 'हरिवंश पुराण' 'महाभारत' के थोड़े ही वर्षों पीछे बना है। उसमें लिखा है कि बज्रनाभ के नगर में 'कौबेररम्भाभिसार' नामक नाटक खेला गया था। उसमें प्रद्युम्न ने नल कूबर का, सूर ने रावण का, साम ने विदूषक का, गद ने परिपार्श्व का,

और मनोवती ने रम्भा का रूप धारण किया था। सम्पूर्ण नाटक का अभिनय इतनी उत्तमत्ता से किया गया था कि उसे देखकर बज्रनाभ आदि दानव बहुत ही प्रसन्न हुए। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में 'अमृत मंथन' और 'त्रिपुरदाह' जैसे नाटकों का भी उल्लेख है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भरत मुनि के समय तक नाटकों की रचना व्यापक स्तर पर होने लगी थी। यद्यपि लोग शिलालि एवं कृशाश्व के नट सूत्रों से परिचित थे, परन्तु उनमें वर्णित विधान इतने अल्प थे कि उनसे नाट्य-रचना एवं नाट्य-प्रयोग का पूर्ण विधान नहीं हो पाता था। नाट्य-रचना एक प्रकार से अनियंत्रित हो रही थी। उसे नियंत्रित करने के लिए भरत-मुनि को 'नाट्य शास्त्र' की रचना करनी पड़ी। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह विशाल ग्रन्थ नाट्य-रचना एवं नाट्य प्रयोग का विश्व कोश है, किन्तु उचित पाठ सम्पादन के अभाव में इसमें कई त्रुटियाँ रह गई हैं। जैसे बारह भेदों में से केवल आठ भेदों का उल्लेख एवं लक्षण निर्देश के बाद उदाहरणों का न दिया जाना, छन्दों की पंक्तियों का पूरा न होना आदि। फिर भी भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' की अपनी अलग प्रतिष्ठा है।

नाटक के संदर्भ में तीन शब्द विचारणीय हैं — नाट्य, नाटक एवं रूपक। नाट्य की उत्पत्ति नट् धातु से मानी गयी है, जिसका अर्थ गात्र-विक्षेपण तथा अभिनय दोनों ही माना गया है। दूसरा शब्द नाटक है। महिम भट्ट के अनुसार जब गीतादि से रंजित नटों के द्वारा काव्य का प्रयोग दिखलाया जाता है तो वह नाटक बन जाता है। भरत मुनि के अनुसार पाँच सन्धियों, चार वृत्तियों, चौंसठ अंगों, छत्तीस लक्षणों सहित नाटकालंकारों से सुशोभित, अत्यन्त सरस, उत्कृष्ट धातु से समन्वित, चमत्कार पूर्ण रचना से युक्त, महापुरुषों के सत्कार से सम्पन्न, अनिन्दित,

आचरण सन्निविष्ट, संधियों के सुश्लिष्ट प्रयोग में रमणीय, सुख का आश्रय, मृदुल शब्दों से समन्वित रचना नाटक के नाम से अभिहित होती है।

नाटक विषयक तृतीय महत्त्वपूर्ण शब्द है— 'रूपक'। आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है " रूपारूपात्तु रूपकम्" अर्थात् जिसके रूप का आरोप किया जाए उसे रूपक कहते हैं। वस्तुतः रूपक में अभिनय करने वाला दूसरे व्यक्ति का रूप धारण करके उसके अनुसार हाव-भाव करता है और बोलता है। इस प्रकार एक व्यक्ति या उसके रूप का आरोप दूसरे व्यक्ति पर होता है। इसलिए इसको 'रूपक' नाम दिया गया है।

भरत-मुनि के 'नाट्य शास्त्र' में छत्तीस अध्याय हैं, जिनमें नाट्य की रचना तथा प्रयोग विषयक नियम, नाट्य कला, नृत्य कला, संगीत, छन्द शास्त्र, अलंकार, रंगमंच निर्माण आदि सभी कलाओं एवं शिल्पों का विस्तार से वर्णन है। भरत-मुनि के 'नाट्यशास्त्र' पर लगभग 17 टीकाएँ लिखी गई हैं। नाट्य शास्त्र के आधार पर 20 स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे गए हैं। उनमें से एक धनंजय का 'दशरूपक' भी है। इस पर उनके अनुज धनिक ने 'अवलोक' नामक टीका भी लिखी है।

धनंजय विष्णु के पुत्र तथा राजा मुंज के सभा में राजकवि थे। इनका समय 974 ई० से 995 ई० माना जाता है। उनका 'दशरूपक' भरत-मुनि के नाट्य शास्त्र के सिद्धांतों का संक्षेप कहा जाता है। वस्तुतः धनंजय ने नाट्य शास्त्र' विषयक भारी सामग्री एकत्रित कर सूत्र रूप में 'दशरूपक' की रचना की। उन्होंने नाट्य-शास्त्र का आँख मूँद कर अनुसरण नहीं किया, बल्कि अपने ग्रंथों में पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों की विवेचना करते हुए नवीन तथ्यों को प्रस्तुत किया। अनेक स्थानों पर उन्होंने प्रयुक्त नामों, लक्षणों तथा विभाजनों को परिष्कृत किया। उनके

अनुज धनिक ने उस पर अवलोक लिख कर इस लक्षण ग्रंथ को और भी परिपुष्ट किया। धनंजय के इस लक्षण ग्रंथ के नाम के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अंतःसाक्ष्य एवं धनिक की 'दशरूपावलोक' नामक टीका से इसका नाम 'दशरूप' ही सिद्ध होता है।

धनिक ने 'दशरूपावलोक' की रचना सिन्धुराज के शासन काल में की थी। उस समय इनकी अवस्था 80 वर्ष की होगी। धनिक ने अपनी इस टीका में कारिकाओं की व्याख्या करने के साथ-साथ नाट्य-शास्त्र के नियमों को समझाने का सफल प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने 300 से अधिक गद्य एवं पद्य के उदाहरण दिए हैं। इन उदाहरणों में से लगभग 70 उदाहरण 'रत्नावली' नाटिका के हैं तथा 24 उदाहरणों की रचना स्वयं धनिक ने की है। अवलोक में अनेक संदिग्ध एवं विवादयुक्त विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है। अवलोक के बिना 'दशरूपक' को समझना बड़ा ही दुरुह है। विद्वानों ने रूपक के दस भेद किये हैं, किन्तु नाटिका सहित रूपक के 11 भेद हो जाते हैं, जिनका यथास्थान निरूपण किया गया है।

'रत्नावली' नाटिका के रचयिता हर्षदेव हैं — यह निर्विवाद है। किन्तु इतिहास में हर्ष नामक छह रचनाकारों का उल्लेख मिलता है। इनमें से सातवीं शताब्दी में विद्यमान स्थाणीश्वराधिपति (606 से 648 ई०) हर्ष ही 'रत्नावली' नाटिका के रचयिता थे। इनके रचे दो नाटक (प्रियदर्शिका और नागानन्द) और मिलते हैं। हर्ष, प्रभाकरवर्धन तथा यशोमती के पुत्र थे। इनके बड़े भाई का नाम राज्यवर्धन तथा छोटी बहन का नाम राज्यश्री था। ये कलम तथा तलवार दोनों के धनी थे। बड़े भाई की हत्या हो जाने पर इन्होंने बड़ी कुशलतापूर्वक अपना राज्य सँभाला। बहनोई की हत्या हो जाने पर बहन के राज्य की भी देखभाल की। सम्राट् हर्ष ने बलभी नरेश, सिन्धुराज पुलकेशिन द्वितीय आदि के साथ युद्ध किया तथा विजय प्राप्त

की। इन्होंने अपने राज्य का पर्याप्त विस्तार किया। ये एक महान् दानी राजा थे। प्रयाग में माघ मेले के अवसर पर दान किया करते थे, जिसके कारण ये एक महान दानी के रूप में प्रसिद्ध हुए। 'रत्नावली' की रचना धनंजय के 'दशरूपक' के पूर्व हुई थी, यह निर्विवाद है। धनंजय एवं धनिक द्वारा 'दशरूपक' एवं 'दशरूपावलोक' में 70 प्रकरणों में 'रत्नावली' से उदाहरणों का उद्धृत किया जाना इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि नाट्य शास्त्र के लक्षणों पर 'रत्नावली' नामक नाटिका पूरी खरी उतरती है।

'रत्नावली' एक नाटिका है। धनंजय के अनुसार नाटिका की कथावस्तु प्रकरण से की जाती है। इसकी कथा कवि-कल्पित होती है। इसका नायक धीर ललित प्रकृति तथा प्रख्यात वंश में उत्पन्न राजा होता है। इसका प्रमुख रस शृंगार है। इसमें स्त्री पात्रों की प्रमुखता होती है तथा इसमें चार अंक होते हैं। कौशिकी वृत्ति की प्रधानता होने के कारण इसमें गीत, नृत्य, वाद्य, हास्य आदि अंगों की प्रचुरता रहती है। नाटिका में दो नायिकाएँ होती हैं। पहली नायिका नृपवंशजा, गम्भीरा एवं माननीया होती है। इसके कारण नायक का संगम नयी नायिका से होने में कठिनाई उत्पन्न होती है। द्वितीय नायिका भी राजवंशीय होती है। धनंजय एवं धनिक द्वारा निर्धारित कसौटी पर 'रत्नावली' नाटिका को कसने पर यह रचना पूर्णतया खरी उतरती है। नायक राजा वत्सराज उदयन है, जो धीर ललित नायक है। इसमें स्त्री पात्रों की बहुलता है। नायिकाएँ दो हैं—वासवदत्ता तथा सागरिका (रत्नावली)। ज्येष्ठा नायिका वासवदत्ता अतिशय मानवती, प्रगल्भा, गम्भीर तथा राजवंशीय है। कनिष्ठा नायिका सागरिका सुन्दरी, मुग्धा एवं राजवंशीय है। ज्येष्ठा नायिका वासवदत्ता की परिचारिका होने के कारण वह उसके नियंत्रण में है। अतः उसका नायक

उदयन से मिलन कष्टपूर्ण होता है। उदयन महारानी वासवदत्ता से सशंकित रहता है। वह छिप-छिप कर सागरिका से मिलने की चेष्टा करता है। नायक उदयन और नवीन नायिका सागरिका का समागम महारानी वासवदत्ता के अधीन है। अंत में वह दोनों को मिला देती है। इस नाटिका में चार अंकों की योजना की गई है। नाटिका का अंगी रस शृंगार है। कौशिकी वृत्ति के नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ नामक भेद क्रमशः चारों अंको में प्रयुक्त हुए हैं। विमर्श संधि का कुछ भाव है तथा शेष संधियाँ भी व्यवहृत हैं।

भारतीय आचार्यों ने नाटक में पाँच तत्त्व स्वीकार किए हैं — वस्तु (कथावस्तु), पात्र, रस, वृत्ति, अभिनय। किसी भी नाटक या नाटिका की समीक्षा इन तत्त्वों के आधार पर की जाती है। सर्वप्रथम हम 'रत्नावली' नाटिका की वस्तु (कथावस्तु) पर विचार करेंगे। इस नाटिका की कथावस्तु कवि कल्पित है। सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री रत्नावली के बारे में एक ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी की थी कि वह जिस व्यक्ति से ब्याही जाएगी वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा। यह बात किसी तरह प्रधान मंत्री यौगन्धरायण को ज्ञात हुई। राज्य की अभ्युन्नति के लिए उसने रत्नावली के साथ राजा उदयन का परिणय आवश्यक समझा। वासवदत्ता के कारण सिंहलेश्वर ने राजा उदयन के साथ विवाह प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया तब यौगन्धरायण ने यह अफवाह फैला दी कि वासवदत्ता जल कर मर गई। अपनी भांजी विषयक यह दुःखद समाचार सुनकर विक्रमबाहु ने अपनी पुत्री रत्नावली, मंत्री वसुभूति तथा कंचुकी बाम्रव्य को राजा उदयन के पास भेजा। रास्ते में जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। रत्नावली किसी तरह बच गई। उसे एक व्यापारी ने यौगन्धरायण को सौंप दिया। यद्यपि वह उसे पहचान गया, किन्तु उसका नाम बदल कर सागरिका रख दिया और उसे



वासवदत्ता की सेविका के रूप में अन्तःपुर में भेज दिया। एक चित्र के माध्यम से राजा उदयन और सागरिका में अनुराग उत्पन्न होता है, जो धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। दोनों मिलते हैं। एक बार उनका मिलन पकड़ लिया जाता है। नयिका वासवदत्ता इस बात से पूर्णतया अनभिज्ञ है कि सागरिका उसकी ममेरी बहन है। वह उसे अंतःपुर में पाश में बाँधकर रखती है तथा बाहर अन्यत्र भेजने की योजना बनाती है। उसी बीच ऐन्द्रजालिक, मंत्री वसुभूति तथा कंचुकी बाभ्रव्य राजा उदयन के पास पहुँचते हैं। विदूषक के गले में रत्नावली की रत्नमाला को देखकर चौंकते हैं। ऐन्द्रजालिक द्वारा आग लगने पर वासवदत्ता की आज्ञा से महाराजा उदयन पाशबद्ध सागरिका को बचाने के लिए आग में कूद पड़ते हैं। उसे बचा भी लेते हैं। तभी रहस्य का उद्घाटन होता है। महारानी वासवदत्ता अपनी ममेरी बहन सागरिका (रत्नावली) को महाराजा उदयन को, वैवाहिक बंधन में बँधने हेतु, सौंप देती है। इस प्रकार कथावस्तु का सुन्दर गठन हुआ है।

कथावस्तु के प्रसंग में अर्थ प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं, संधियों, सूच्य वस्तु विवेचन, अर्थोपक्षेपक, नाट्य धर्म आदि पर विचार किया जाता है। 'रत्नावली' में तीन अर्थ प्रकृतियाँ, पाँच कार्य अवस्थाएँ, पाँचों संधियों के अनेक भेदोपभेदों, अर्थोपक्षेपक के भेदों, नाट्य धर्म के तीन+एक भेदों का विधिवत् निर्वाह हुआ है।

नाटक का द्वितीय प्रमुख तत्त्व पात्र है। 'रत्नावली' नाटिका में पुरुष तथा स्त्री दोनों पात्र हैं, किन्तु नाटिका के लक्षणों के अनुरूप स्त्री पात्रों का आधिक्य है। इस नाटिका का 'नायक' राजा उदयन है, क्योंकि वह कथा को फल की ओर ले जाता है तथा उसी से फल की प्राप्ति होती है। वह राजा है, अतः जनता उसके प्रति आकृष्ट होती है। वह सबका सहज

आलम्बन है, अतः साधारणीकरण में कोई कठिनाई नहीं होती। वह धीर ललित नायक है। वह निश्चिन्त, कलासक्त, कलापरायण, सुखान्वेषी, कोमल स्वभाव वाला, वीर, साहसी तथा दक्षिण नायक है। नाटिका के आरम्भ से लेकर अंत तक कथावस्तु सागरिका पर केन्द्रित है, अतः वही 'रत्नावली' नाटिका की नायिका है। उसका वास्तविक नाम 'रत्नावली' है। वह स्वकीया नायिका है। यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, वैभव तथा भूषण— ये गुण उसमें पाए जाते हैं। वह सहनशील, कुशल चित्रकार, भावुक, भोली, मुग्धा, दृढ़ निश्चयी, लज्जाशील, उच्च कुल की तथा वैभव सम्पन्न है। 'रत्नावली' उत्तम नायिका है, क्योंकि उसमें आत्मसंतोष तथा निर्भरता है। वह कोमलांगी, सुशीला तथा रूपवती होने के कारण पद्मिनी जाति की है। विदूषक, यौगन्धरायण जैसे पुरुष पात्र तथा वासवदत्ता, कंचनमाला, सुसंगता जैसे स्त्री पात्र अपने—अपने स्थान पर अपनी—अपनी भूमिका अच्छी तरह निबाहते हैं।

नाटक का तृतीय विचारणीय तत्त्व रस है। प्रत्येक नाटक का कोई—न—कोई अंगी रस होता है। 'रत्नावली' नाटिका का अंगी रस 'शृंगार' है, जो रसों का राजा माना जाता है। इस नाटिका में नाटककार ने शृंगार का समुचित प्रयोग किया है। आश्रय—आलम्बन राजा उदयन और सागरिका (=रत्नावली) हैं। मदन महोत्सव के अवसर पर राजा उदयन को कामदेव समझकर सागरिका उन पर मोहित हो उठती है। यह प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा उत्पन्न प्रेम पूर्वानुराग है, जो विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत आता है। वस्तुतः इस नाटिका में शृंगार रस के दोनों रूप विद्यमान हैं। संयोग शृंगार का इस सूक्ष्मता से निरूपण हुआ है कि पाठक या दर्शक प्रसंग की वास्तविकता से परिचित हो जाएँ तथा अश्लीलता भी दृष्टिगोचर न हो। विप्रलम्भ शृंगार भी रसांगों से परिपुष्ट है।

नाट्य—रचना में चतुर्थ तत्त्व वृत्ति का अपना अलग महत्त्व है। नायक—नायिका के विशेष बरताव या ढंग को वृत्ति कहते हैं। वृत्तियों के चार भेद हैं— सात्वती, कैशिकी, आरभटी तथा भारती। प्रथम तीन वृत्तियों का प्रयोग नाट्य—रचना में तथा चौथी वृत्ति का उपयोग नाट्य—प्रयोग में होता है। इन तीनों वृत्तियों में कैशिकी तथा आरभटी वृत्तियों का ही प्रयोग 'रत्नावली' में हुआ है। रसानुकूलता की दृष्टि से भी इन वृत्तियों की अपनी अलग सत्ता है। वृत्ति के संदर्भ में प्रवृत्ति भी विचारणीय है। धनंजय की दृष्टि में देश के अनुसार पात्रों की भाषा, क्रिया और वेश का होना प्रवृत्ति है। सर्वप्रथम भाषा को लें। इसमें नाटककार ने भाषा के दोनों रूपों—वाचिक तथा अवाचिक का प्रयोग किया है। इस नाटिका में पात्रानुकूल संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है। अवाचित भाषा में सभी प्रकार की शारीरिक गतियाँ, स्थितियाँ, भाव—भंगिमाएँ तथा अभिव्यक्तियाँ आती हैं। इन सबके प्रयोग से नाटिका का शिल्प—सौन्दर्य बढ़ गया है, तथ साधारणीकरण की स्थिति सहज उत्पन्न हो जाती है।

कालजयी नाटक रंगमंचीय होता है। रंगमंच के अनुकूल बनाने के लिए नाटककार को नाट्य—प्रयोग का ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए पूर्व रंग (नान्दी, रंगद्वार, स्थापना), भारती वृत्ति तथा उसके अंग, प्रहसन और उसके अंग, वीथी, प्ररोचना आदि का ज्ञान होना चाहिए। 'रत्नावली' के रचनाकार हर्ष को इन सबका सम्यक् ज्ञान था। इन सबका उन्होंने उचित समायोजन किया है, तभी तो उनकी रचना 'रत्नावली' एक कालजयी रचना बन गई।

प्रत्येक शोध—कार्य की सीमाएँ होती हैं, और शोधार्थी को उन सीमाओं में बँध कर अपना शोध—कार्य करना पड़ता है। मैंने भी अपना शोध—कार्य 'विषय—परिधि' के अन्तर्गत किया है। प्रथम अध्याय में 'नाट्य

विषय' को, सीमा में रह कर, संक्षेप में समेटा है। उसी प्रकार हर्ष का जीवन—चरित्र एवं उनकी रचनाओं के विषय को तद्विषयक वाद—विवाद के सन्दर्भ में विस्तार से लिखा जा सकता था, किन्तु मैंने सीमा को ध्यान में रखते हुए ऐसा नहीं किया। मैंने तो 'रत्नावली' नाटिका की समीक्षा की है, वह भी धनिक के अवलोक के सन्दर्भ में 'विषय सीमा' को ध्यान में रखते हुए।

शोध—कार्य के रूप में 'रत्नावली' रूपी श्रेष्ठ नाटिका का नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। इस शोध—प्रबन्ध में शोध के आलोक में प्रामाणिक और शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। इस अध्ययन में अनेक अछूते तथा अत्यल्प स्पर्श किए गए तथ्यों पर, सीमाबद्ध रहते हुए, प्रकाश डाला गया है। नवीन तथ्यों का उद्घाटन करके व्याप्त भ्रान्तियों का निरसन भी किया गया है। आशा है, प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध भावी अनुसन्धित्सुओं का मार्ग प्रशस्त करेगा तथा वे 'नागानन्द', 'प्रियदर्शिका' प्रभृति कृतियों पर गवेषणात्मक अध्ययन करके संस्कृत वाङ्मय की अभिवृद्धि करेंगे।